संपादकीय जागरण

गुरुवार, 30 नवंबर, 2017 : मार्गशीर्ष शुक्ल 11 वि. 2074

अवसर अवश्य दस्तक देता है बस धैर्य के साथ उसकी प्रतीक्षा करें

दहेज का अभिशाप

दहेज प्रताड़ना के मामलों में तुरंत गिरफ्तारी पर रोक लगाने के अपने ही आदेश पर सुप्रीम कोर्ट ने नए सिरे से विचार करने का फैसला तो कर लिया, लेकिन जब तक वह किसी निर्णय पर नहीं पहुंचता तब तक यह प्रश्न अनुत्तरित ही रहने वाला है कि वह इस मामले में कोई दिशानिर्देश तय करेगा या नहीं? इस असमंजस का कारण सुप्रीम कोर्ट का यह सवाल है कि आखिर जब दहेज प्रताड़ना से संबंधित कानून मौजूद है तो फिर दिशानिर्देश बनाने की क्या जरूरत है? यह अस्पष्टता जितनी जल्द दूर हो उतना ही बेहतर, लेकिन केवल इतना ही पर्याप्त नहीं। इस किसी व्यवस्था की भी जरूरत है जिससे न तो दहेज प्रताड़ना कानून कमजोर हो और न ही उसका दुरुपयोग हो। सुप्रीम कोर्ट ने दहेज प्रताड़ना के मामले में तुरंत गिरफ्तारी पर रोक का फैसला इसलिए दिया था, क्योंकि धारा 498-ए के दुरुपयोग की शिकायतें बढ़ती ही जा रही थीं। चूंकि इस धारा के तहत दहेज प्रताड़ना की शिकायत होते ही तुरंत गिरफ्तारी का चलन आम हो चुका था इसलिए ज्यादातर मामलों में शुरुआती जांच-पड़ताल के बगैर ससुराल पक्ष के लोग जेल भेज दिए जाते थे। कई मामलों में दहेज के लिए प्रताड़ित करने के आरोपी ससुराल पक्ष के सभी सदस्य और यहां तक कि रिश्तेदार भी होते थे। उन्हें भी जेल की हवा खानी पड़ती थी। बाद में ऐसी कई शिकायतें झूठी या अतिश्योक्तिपूर्ण साबित होती थीं, लेकिन तब तक जेल भेज दिए गए लोगों की प्रतिष्ठा तार-तार हो जाती थी। उन्हें जेल जाने के साथ ही सामाजिक अपमान का भी सामना करना पड़ता था।

न्याय और कानून का तकाजा यह कहता है कि किसी भी मामले में आरोपी बनाए गए लोगों की गिरफ्तारी प्रारंभिक जांच-पड़ताल के बाद ही हो, लेकिन दहेज प्रताड़ना के मामलों में अगर पुलिस जांच-पड़ताल शुरू करती थी तो उस पर ऐसे आरोप लगने लगते थे कि वह टालमटोल या फिर मामले को रफा-दफा कर रही है। इसके चलते पुलिस आरोपियों को तत्काल गिरफ्तार करने में ही अपनी भलाई समझती थी। जैसे यह सही है कि धारा 498-ए का दुरुपयोग हो रहा है वैसे ही यह भी कि दहेज के नाम पर बहुओं को प्रताड़ित करने का सिलसिला भी कायम है। उन्हें केवल परेशान ही नहीं किया जाता, बल्कि कुछ मामलों में मौत के हवाले भी किया जाता है। आंकड़े बताते हैं कि 2012-15 के बीच दहेज हत्या के तीस हजार से अधिक मामले दर्ज हुए। यह भयावह आंकड़ा है और भारतीय समाज की विकृति को रेखांकित करता है। दहेज ने समय के साथ एक ऐसी सामाजिक बुराई का रूप लिया जो करीब-करीब सभी समुदायों में प्रविष्ट कर गई। आज यह केवल हिंदू समाज तक ही सीमित नहीं है। सामाजिक बुराइयों के मामले में इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि केवल कानून के बल पर उन्हें दूर नहीं किया जा सकता। यह उम्मीद की जाती है कि सुप्रीम कोर्ट जल्द ही ऐसा कोई फैसला देगा जिससे दहेज प्रताड़ना रोधी कानून और अधिक उपयुक्त रूप में लागू होगा, लेकिन इसी के साथ समाज को भी यह देखना होगा कि वह खुद को दहेज के अभिशाप से कैसे मुक्त करे।

भ्रष्टाचार की बानगी

यमुना प्राधिकरण क्षेत्र में हुए बैकलीज घोटाले ने सत्ता में बैठे लोगों, अधिकारियों और रसूखदार लोगों के गठजोड़ को उजागर किया है। वैसे यह पहला अवसर नहीं है कि जब अधिग्रहण की आड़ में किसानों की भूमि पर अधिकारियों और रसूखदार लोगों ने चांदी काटी लेकिन, यह नए चोर दरवाजे की तलाश है। बैकलीज घोटाला जमीन की नवैयत बदलने का खेल है। इसमें नियमों की आड़ में अपनों को लाभ पहुंचाया गया। पिछली सरकारों में ऐसा जमकर किया गया। यह ऐसा काम था जिसमें सरकार की कई योजनाएं दांव पर लगा दी गईं। अब जब इस पूरे मामले की कलई खुलने लगी है तो कई सफेदपोश चेहरों से परदा उठने की संभावना दिख रही है। नोएडा गाजियाबाद और मेरठ क्षेत्र में किसानों की भूमि के नाम पर कई घोटाले पहले भी प्रकाश में आ चुके हैं। मुआवजे का गड़बड़झाला भी सामने आ चुका है।

बैकलीज घोटाला तो सिर्फ एक बानगी है। अन्य योजनाओं को खंगाला जाए तो भ्रष्टाचार की कई परतें उजागर होंगी

वस्तुतः बैकलीज का खेल बहुत ही चतुराई से खेला गया। इसकी भनक भी शायद न लगती यदि मेरठ के मंडलायुक्त ने विस्तृत जांच न शुरू करा दी होती। इसमें आबादी नियमावली की ही आड़ ली गई। प्राधिकरण अपनी किसी योजना के लिए भूमि का अधिग्रहण करता है और इसमें आबादी की जमीन होती है तो यह किसानों को वापस कर दी जाती है। इस पूरे मामले में भी यही हुआ। किसानों की जमीन ले ली गई। इसके बाद उन जमीनों को जिस पर खेती होती थी, उन्हें भी आबादी दिखाकर वापस भारी कीमतों में रजिस्ट्री कर दी गई। अब इसमें अधिकारियों की क्या कीमत थी, यह जांच का विषय है। एक बड़ा खेल यह भी होता है कि किसी योजना की शुरुआत होने से पहले ही सत्ता से जुड़े लोग वहां के किसानों की जमीन की रजिस्ट्री करा लेते हैं और अधिग्रहण के बाद मुआवजे की बड़ी राशि खुद हासिल कर लेते हैं। एक्सप्रेस-वे जैसी योजनाओं में ऐसी बातें सामने आई हैं। इसी तरह बैकलीज घोटाला तो सिर्फ बानगी है। अन्य योजनाओं को भी खंगाला जाए तो भ्रष्टाचार की कई परतें उजागर होंगी।

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या वैश्विक उद्यमिता शिखर सम्मेलन के भारत में आयोजन से देश में उद्यमिता को प्रोत्साहन मिलेगा?

आज का सवाल

क्या सचिन तेंदुलकर के सम्मान में भारतीय क्रिकेटर टीम से दस नंबर जर्सी को विदाई दे देनी चाहिए?

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर POLL लिखें, स्पेस देकर Y, N या C लिखकर 57272 पर भेजें
Y -हां, N-नहीं, C-कह नहीं सकते

परिणाम एसएमएस से प्राप्त नतीजों के साथ जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है। सभी आंकड़े प्रतिशत में।

कहां जा रहा झूठ का कारवां

प्रदीप सिंह

जज लोया की मौत के मामले में कुल मिलाकर बिना तथ्यों के एक बड़ा विमर्श खड़ा करने की कला का ही प्रदर्शन किया गया

कौआ कान ले गया कहावत तो सुनी ही होगी। लोग अपना कान देखने की जहमत उठाने के बजाय कौवे के पीछे दौड़ पड़ने का काम करते ही रहते हैं। बाकी कोई ऐसा करे तो करे, लेकिन जब पत्रकार/बुद्धिजीवी ऐसा करने लगें तो मानना चाहिए कि कुछ गड़बड़ है और समस्या गंभीर है। तर्क, बुद्धि और समझदारी यह कहती है कि कान की सलामती या गैर सलामती सुनिश्चित करने के बाद ही कोई कदम उठाएं, पर तय मानिए कि जब स्वार्थ हावी हो जाए तो ऐसा नहीं होगा। इसे यों भी कह सकते हैं कि जब स्वार्थ के चलते झूठ को को सत्य के रूप में पेश करने आदत बन जाए तो बलि सत्य की ही चढ़ेगी। सस्पेंस बढ़ाने की बजाय बता दें कि बात न्यायाधीश बृजमोहन हरिकिशन लोया की मौत और उससे जुड़े विवाद की हो रही है। जज लोया की मौत नागपुर में एक दिसंबर 2014 को हृदयगति रुकने के कारण हुई। वह सोहराबुद्दीन हत्याकांड की सुनवाई कर रहे थे। न्यायाधीश लोया एक साथी न्यायाधीश की बेटी की शादी में शरीक होने नागपुर गए थे। उनकी मौत को लेकर अब तक कोई विवाद नहीं था, पर कुछ दिनों पहले एक अंग्रेजी पत्रिका में उनकी बहन और उनके पिता के हवाले से छपा कि न्यायाधीश लोया की मौत संदेहजनक परिस्थितियों में हुई। इस खबर में ऐसी कई बातें कही गई थीं जिनका मकसद यही साबित करना अधिक था कि जज लोया की मौत स्वाभाविक नहीं थी। इस खबर के छपते ही दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल, कांग्रेस, वामदलों के कुछ नेता और दिल्ली हाईकोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एपी शाह ने जांच की मांग कर दी। वकील प्रशांत भूषण ऐसे हर मौके की तलाश में रहते ही हैं। इसके बाद फिर क्या था? दिल्ली के लेफ्ट लिबरल मीडिया ने इस खबर की कोई तफ्तीश या तस्दीक किए बिना उसे हाथों हाथ उठा लिया। उसने यह काम न्यायाधीश लोया या उनके परिवार से सहानुभूति के चलते नहीं उठाया। उनकी इस बिना विचारे अति सक्रियता का एकमात्र कारण यह था कि लोया जिस मामले की सुनवाई कर रहे थे उसमें भाजपा अध्यक्ष अमित शाह के खिलाफ भी आरोप था, जिससे वह बरी हो चुके हैं।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और अमित शाह के खिलाफ कुछ भी मिले तो मीडिया और बुद्धिजीवियों के इस वर्ग के लिए सत्य और तथ्य पीछे चले जाते हैं। उनके लिए कही-सुनी बात भी पत्थर की लकीर बन जाती है। दरअसल अंग्रेजी पत्रिका की खबर और जांच की मांग पर राष्ट्रीय विमर्श खड़ा करने की जी तोड़ कोशिश इसीलिए हुई। मान लिया गया कि न्यायिक व्यवस्था पर भारी खतरा आ गया है। जजों की जान मुश्किल में है और जो लोग इस खबर पर मौन हैं वे या तो बिके हुए हैं या फिर डरे हुए। एक चैनल के एंकर महोदय हैं जिन्हें पिछले कुछ सालों से यह मुगालता हो गया है कि उनके अलावा सब पत्रकार बिकाऊ हैं और भारत में निर्भीक एवं स्वतंत्र पत्रकारिता का सारा बोझ उन्हीं के कंधों पर टिका है। उन्होंने अंग्रेजी पत्रिका की खबर पर ऐसी कहानी गढ़ी कि 'सच्ची कहानियों' के लेखक भी दांतों तले उंगली दबा लें। उनके मुताबिक, ''एक रिपोर्टर ने बहुत मुश्किल से एक जज की मौत से धूल की परत हटाकर रिपोर्ट छापी है। यह दिल्ली उसे बर्फ की सिल्ली में दबा देना चाहती है। पहाड़ों पर जितनी बर्फ नहीं गिरी उससे अधिक दिल्ली में सत्ता के गलियारे में गिर रही है। रिपोर्ट पढ़ने वालों की सांसें जम जाती हैं और इसे तो रात को रजाई के अंदर टार्च की रोशनी में पढ़ना चाहिए।'' आखिर इसे अतिशयोक्ति और आत्मश्लाघा की पराकाष्ठा के अलावा और क्या कहा जा सकता है? यह सब चल ही रहा था कि एक अंग्रेजी दैनिक ने इस मामले की पड़ताल और उस रात नागपुर के उस अस्पताल में मौजूद न्यायाधीश लोया के दो साथी न्यायाधीशों (जो चश्मदीद हैं) से बातचीत के आधार पर बताया कि पत्रिका में दिए गए तथ्य निराधार हैं। एक अन्य अंग्रेजी दैनिक के अनुसार, न्यायाधीश लोया के पुत्र ने इसी मंगलवार को मुंबई हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश से मिलकर उन्हें एक पत्र दिया कि उन्हें अपने पिता की मौत की परिस्थितियों पर न तो कोई शुबहा है और न ही शिकायत। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें अपने पिता के साथी जजों की बातों पर भरोसा है जो उस रात वहां मौजूद थे। उसके बाद से सन्नाटा पसरा है। पता नहीं दिल्ली में गिरी बर्फ की सिल्लियों का क्या हुआ, लेकिन तथाकथित पत्रकारिता के इस रूप का यह न तो पहला उदाहरण है और न ही आखिरी। यह सिलसिला पिछले 15 सालों से चल रहा है। जैसे-जैसे लोकसभा चुनाव नजदीक आएगा, इसमें और तेजी आएगी।

अवधेश राजपूत

मशहूर व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई ने एक दूसरे संदर्भ में फिलासफर किंग की व्याख्या की थी। बुद्धिजीवियों का यह वर्ग परसाई के उसी फिलासफर किंग की तरह ही है। परसाई ने लिखा था, 'फिलासफर किंग की एक ताकत होती है जो तर्क और यथार्थ से आगे होती है। वह है फिलासफर किंग की अदा। जनता (यहां पाठक और दर्शक समझें) अदा पर मरती है।' आगे उन्होंने लिखा है, 'और कभी-कभी ऐसा भी वक्त आता है जब अदा काम नहीं करती।' पत्रकारों और बुद्धिजीवियों के इस वर्ग की खासियत है कि इनके न्याय के दो रूप होते हैं- एक दूसरे के लिए, दूसरा अपने लिए। इनके खिलाफ आरोप लगे तो आरोप लगाने से पहले ही आप सारे सुबूत दे दीजिए और साबित कर दीजिए तब सोचेंगे कि आरोप बनता है कि नहीं? और आपने सुबूत दे दिए तो जवाबी हमले का सबसे धारदार अस्त्र तैयार है कि यह बोलने की आजादी/मीडिया की स्वतंत्रता पर हमला है। दूसरों पर इनका आरोप लगाना ही आरोप को सिद्ध होना मान लिया जाना चाहिए। इन्हीं हथकंडों से इनके झूठ का कारवां चलता रहता है। कोई कमी रह जाती है तो भक्त लोग अपने व्यवहार और कथन से उसकी भरपाई कर देते हैं। इनकी सबसे बड़ी कला है, इनका समवेत स्वर में बोलना। बिना तथ्यों के भी ये इतना बड़ा विमर्श खड़ा कर देंगे कि जिसे विषय और तथ्यों की जानकारी नहीं है उसे लगने लगेगा कि कुछ तो होगा ही। इसी कला का प्रदर्शन जज लोया की मौत के मामले में किया गया।

इनकी बड़ी समस्या है कि नरेंद्र मोदी को आम मतदाताओं ने चुनकर भेजा है। लाखों लोगों की हत्या करवाने वाले लेफ्ट लिबरल्स माओ और स्टालिन की फोटो का बैज सीने पर लगाने या उनके चित्र घर में टांगने में गर्व महसूस करते हैं, पर मोदी को डिक्टेटर बताते हैं। ये मानते हैं कि मोदी का विरोध नहीं होना चाहिए, बल्कि मोदी से नफरत की जानी चाहिए। मोदी से नफरत का मतलब उनसे जुड़े सभी लोगों से नफरत। उनकी यह नफरत उन्हें या तो सच्चाई देखने नहीं देती या ये लोग सच्चाई को देखकर अनदेखा करते हैं। इन्हें उत्तर प्रदेश के मतदाताओं से बड़ी उम्मीद थी। वहां से निराश होने के बाद अब सारी उम्मीदें गुजरातियों पर टिकी हैं। यदि गुजरातियों ने निराश किया तो जवाब तैयार है कि हम जानते थे कि गुजराती सांप्रदायिक हैं।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

मानवाधिकारों का सवाल

डॉ. महेश भारद्वाज

जेलों की स्थिति पर आने वाली खबरें चिंतित जरूर करती हैं, लेकिन आंकड़े कोई बहुत खराब तस्वीर पेश नहीं करते

लंदन की एक अदालत में आर्थिक धोखाधड़ी के आरोपी विजय माल्या के प्रत्यर्पण पर चल रही सुनवाई के दौरान भारत में जेलों की स्थिति को लेकर हुई बहस ने हमें एक बार फिर देश की जेलों के हाल पर विचार करने को विवश किया है। ऐसा पहली बार नही हुआ है जब किसी आरोपी या अपराधी के प्रत्यर्पण के खिलाफ उसके वकीलों ने यहां की जेलों मे कैदियों की सुरक्षा और उससे संबंधित विषयों को उठाया हो। इससे पहले मैच-फिक्सिंग के आरोपी संजीव चावला के प्रत्यर्पण का भी कुछ ऐसी ही दलीलों के आधार पर विरोध किया गया था। चूंकि बात जेलों की दशा को लेकर हो रही है तो उपलब्ध आंकड़ों पर भी नजर डालना उचित होगा। दिसंबर 2015 तक के आंकड़ों के अनुसार देश की विभिन्न 1,401 जेलों में 4,19,623 कैदी थे। इनमें पुरुष कैदियों की संख्या 4,01,789 और महिला कैदियों की तादाद 17,834 थी। यानी कुल कैदियों में 95.7 प्रतिशत पुरुष और 4.3 प्रतिशत महिलाएं हैं। इनमें छह हजार से ज्यादा विदेशी कैदी भी शामिल हैं। यह संख्या जेलों की निर्धारित क्षमता से काफी ऊपर यानी 114.4 प्रतिशत है। जहां तक कैदियों पर आने वाले वार्षिक खर्चे का सवाल है तो वह सबसे ज्यादा बिहार में है तो सबसे कम दिल्ली की तिहाड़ जेल में। बिहार में यह खर्च 83,691 रुपये प्रति कैदी रहा तो दिल्ली की तिहाड़ जेल में 73,543 रुपये। जेल में कैदियों को उनके हुनर के हिसाब से पारिश्रमिक भी दिया जाता है जो सबसे ज्यादा पुद्दुचेरी जेल में है जहां कुशल/निपुण कैदी को 180 रुपये प्रतिदिन और अर्ध कुशल को 160 रुपये जबकि अकुशल को 150 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से मेहनताना दिया गया।

हमारे यहां कैदियों की देखभाल के लिए स्टाफ की स्थिति उतनी बुरी नहीं है जितनी दिखाने-बताने की कोशिश होती है। 4,19,623 कैदियों के लिए 53,009 का स्टाफ है और इस हिसाब से आठ कैदियों पर एक जेलकर्मी का औसत है। जेलों की स्थिति को लेकर समय-समय पर आने वाली खबरें चिंतित जरूर करती हैं, लेकिन आंकड़े कोई बहुत खराब तस्वीर पेश नही करते। यद्यपि किसी भी प्रकार के तुलनात्मक नजरिये के लिए जेल मे बंद लोगों के चरित्र को जरूर ध्यान में रखना होगा। भारत में 1993 में गठित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और फिर 26 राज्यों में स्थापित राज्य मानवाधिकार आयोग देश भर की जेलों मे बंद कैदियों के मानव अधिकारों को लेकर किसी भी मायने में किसी भी विकसित पश्चिमी देश से कम संवेदनशील नहीं हैं। कैदियों की सुरक्षा और उनके रहने, खाने-पीने और अन्य जरूरी सुविधाओं को लेकर जेल प्रशासन पर केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के संबंधित विभाग तो सीधा-सीधा नियंत्रण रखते ही हैं, बल्कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और संबंधित राज्य के मानवाधिकार आयोग की भी कड़ी नजर होती है। कैदियों की सुरक्षा को इनमें सबसे अहम मुद्दा माना जाता है जिसकी सीधी जिम्मेदारी संबंधित जेल प्रशासन की होती है। ऐसे में कोई भी जेल प्रशासन कैदियों की सुरक्षा के मामले को हल्के में नही ले सकता। कैदियों से संबंधित मूलभूत सुविधाओं और उदाहरण के तौर पर कैदियों को दी जाने वाली चिकित्सा सुविधाओं को देखें तो हम पाएंगे कि कैदी को आवश्यक चिकित्सा सुविधा और वह भी समय पर मुहैया कराना जेल प्रशासन के लिए महत्वपूर्ण है।

इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि यदि किसी कैदी को समय रहते आवश्यक उपचार उपलब्ध नहीं कराया गया और उसके चलते उसकी मौत हो गई तो संबंधित जेल अधिकारी के खिलाफ न केवल अनुशासनात्मक कार्यवाही होती है, बल्कि मृतक कैदी के परिवार को उचित मुआवजा भी दिलाया जाता है। मुआवजे की रकम भी सम्मानजनक होती है। देश भर की जेलों को उनके यहां हुई हर प्रकार की मृत्यु की सूचना राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को देनी होती है। वर्ष 2015 में स्वाभाविक रूप से हुई मौतों की संख्या 1,469 थी और अस्वाभाविक मौतों की संख्या 115 थी। कैदियों के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए बने प्रावधान हमें देश में मानवाधिकारों की अवधारणा और उनके अनुपालन पर गर्व कराते हैं जो किसी भी पाश्चात्य विकसित राष्ट्रों में लागू व्यवस्था से कम नही हैं। यहां पाश्चात्य देशों से तुलना की बात इसलिए की जा रही है, क्योंकि कतिपय पश्चिमी देश स्वयं को दुनिया भर में मानवाधिकारों के सबसे बड़े पैरोकार के रूप में पेश करते हैं और भारतीय जेलों की दशा को खराब दिखाकर उन्हें आड़ मुहैया कराते हैं जिनका प्रत्यर्पण भारत में होना होता है। इस दुष्प्रचार से निपटने की जरूरत है।

भारत में जेल में बंद कैदी की सुरक्षा में चूक के लिए किसी न किसी की जिम्मेदारी तय की गई है। कैदियों के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए बने प्रावधान यह भी सवाल खड़ा करते हैं कि क्या आम आदमी के मानवाधिकारों की रक्षा के भी उपयुक्त प्रावधान हैं? इस पर गौर करें कि जिस तरह कैदी को समय पर उपयुक्त इलाज न दिला पाने के लिए किसी न किसी को जिम्मेदार ठहराने के प्रावधान हैं उसी तरह आम आदमी की सुरक्षा और उसे समय पर उपयुक्त उपचार मिले, इसके प्रावधान नहीं हैं। आम आदमी के इलाज में गफलत पर जेल की तरह किसी को शायद ही जिम्मेदार ठहराया हो जाता हो। हमें यहां इस प्रश्न पर गहराई से विचार करना होगा कि आम आदमी की उतनी ही चिंता क्यों नहीं है? इस प्रश्न पर गहराई से विचार किया जाना चाहिए, क्योंकि कहीं यह न लगने लग जाए कि जेल में बंद कैदी को तो इसलिए बेहतर सुविधाए हासिल है, क्योंकि उसे सुविधाएं सुनिश्चित कराने वाला तंत्र प्रभावशाली है। आखिर आम आदमी के लिए भी प्रभावी तंत्र क्यों नहीं है? गरीब इंसान के इलाज के लिए वैसी ही जवाबदेही क्यों नहीं जैसी जेल मे बंद कैदी के इलाज के लिए है? क्या कारण है कि सड़क पर पड़े हर शव के पोस्टमार्टम और अंतिम संस्कार का जिम्मा तो पुलिस का है, लेकिन कोई जब भूख और ठंड से सड़क पर बेहाल होता है तो कोई उसकी फिक्र नहीं करता। आखिर क्यों? राजधानी दिल्ली की सड़कों पर हम देखते हैं कि जिंदा इंसान की शायद ही किसी को फिक्र हो, जबकि सड़क पर मरने वाले हर इंसान का हिसाब दिल्ली पुलिस के पास जरूर होता है।

(लेखक भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारी हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

आस्था

आस्था के फूल हृदय की पवित्रता रूपी क्यारी में उगे मनोहारी पौधे पर ही खिल सकते हैं। वही आस्था लक्ष्य को पाने में समर्थ हो सकती है, जिसकी जड़ें मौलिकता की खाद से उर्वरा शक्ति पाती हैं। आस्था भक्ति, प्रेम, अपनत्व व आनंद की आधारशिला है। आस्था के पवित्र सरोवर में खिले भावकमल ही प्रभुकृपा का उत्तम प्रसाद पाने के अधिकारी हैं। आस्था की दृढ़ता अपने और अपने आराध्य के मध्य मिलन की दूरी व खाई को पाट देती है। आस्था अपने मंतव्य, गंतव्य व आराध्य को पाने की वह जादुई डोरी है, जिसकी शक्ति, भक्ति व सामर्थ्य से प्रभु, प्रेमी व लक्ष्य स्वयं ही उसकी ओर आकर्षित होते चले आते हैं। पक्के और दृढ़ इरादों से विरचित आस्था के मंसूबे धारक को उसकी मनोकामनाओं की अंतिम मंजिल तक पहुंचाने की गारंटी देते हैं। आस्था अपने साथ विश्वास, नैतिकता, मूल्य व जीवटता को लेकर चलती है। आस्था भटकते राहगीरों और जीवन-सागर में दिशाहीन होकर क्रूर समय के थपेड़े खाते मानव व जीव समुदाय को सही राह दिखाती है।

आस्था के बिना कोई भी व्यक्ति जीवन लक्ष्य में आनंद व खुशी पाने की कल्पना नहीं कर सकता। आस्था सतोगुणी मूल्यवान सृष्टि की रचना करती है, जिसका उद्देश्य विशुद्ध रूप से आराधना में पवित्रता के साथ-साथ जीवन को एक उत्तम उद्देश्य के लिए प्रेरित करना होता है। आस्था की प्रबलता प्रभु की अपने प्रति करुणा और प्रीति के बढ़ने की द्योतक होती है। उत्साह भी आस्था की ही आत्मजा है जो इससे प्रेरणा पाकर प्रभु मिलन व उनके साक्षात्कार में सहायक होती है। आस्था, पवित्र भावों की वह मंदाकिनी है जिसमें स्नान करने की लिए देवगण स्वयं ही उत्कंठित रहते हैं। आस्था ही भक्ति व भक्त का कवच है। पावन आस्था की ही परिणति है कि प्रभु राम व माता सीता सदैव अपने भक्त पवनपुत्र हनुमान के हृदय में ही विराजमान रहते हैं। आस्था भक्त के पास ईश्वरीय अनुकंपा की अमोघ शक्ति है, जिससे वह किसी भी पावन जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो सकता है। जीवन के अनमोल वैभवों को पाने और आत्मिक व असली आनंद प्राप्ति का मूल मंत्र आस्था है। समृद्धि, खुशहाली, भौतिक, आध्यात्मिक उन्नति और आनंद की जीवन-डोर है आस्था। आओ इसे अपनाकर इस मानव जीवन को सफल और अनुकरणीय बनाएं।

डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

पाठकनामा

pathaknama@nda .jagran.com

अपनी नीति पर शक

चुनौतियों और उम्मीदों के बीच राहुल शीर्षक लेख में कुलदीप नैयर ने गुजरात विधानसभा चुनाव में कांग्रेस की चुनौतियों और उम्मीद पर अपनी राय रखी। जबसे गुजरात विधानसभा चुनाव का बिगुल बजा है तब से मीडिया और केंद्र सरकार के मंत्री और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का ध्यान सिर्फ और सिर्फ गुजरात की ओर केंद्रित हो गया है, यह वर्ग इससे पहले हिमाचल विधानसभा में व्यस्त रहा और गुजरात के बाद फिर किसी ओर राज्य में होने वाले विधानसभा चुनाव में व्यस्त हो जाएगा। फिर लोकसभा चुनाव का समय आ जाएगा। अगर केंद्र के मंत्री इसी तरह चुनाव के मकड़जाल में उलझे रहेंगे तो वे आमजन के मुद्दों की तरफ कब ध्यान देंगे? कांग्रेस के पास तो सता नहीं है, इसलिए उसे गुजरात में अपनी हवा बनाने के लिए एड़ी चोटी का जोर लगाना पड़ रहा है, लेकिन गुजरात में भाजपा के मुख्यि अमित शाह और प्रधानमंत्री मोदी का गढ़ माना जाता है, फिर क्यों भाजपा को गुजरात में पसीना बहाना पड़ रहा, क्या केंद्र की नीतियों पर इनको कोई शक है? गुजरात विधानसभा चुनाव में ऊंट किस करवट बैठेगा यह तो आने वाला समय ही बताएगा, लेकिन इसमें भी कोई दोराय नहीं है कि यहां हार्दिक पटेल भी भाजपा और कांग्रेस के लिए चुनौती बना हुए हैं।

राजेश कुमार, पंजाब

भिक्षा के मानक

केंद्र सरकार के कथनानुसार अगर कोई गरीबी के कारण भीख मांग रहा है तो यह अपराध नहीं है। जबकि देश के अंदर भिक्षा देना और लेना दोनों अपराध घोषित है तो फिर हम कैसे कह सकते हैं कि जो भिक्षा मांग रहा है वह गरीबी के कारण ही मांग रहा है। देश में ऐसा कोई भी पैमाना नहीं बना जिससे कि ये पता लगाया जा सके कि कौन गरीबी से मांग रहा है और कौन शौकिया भिक्षा मांग रहा है। बहुत से लोग हैं जिनका खानदानी धंधा ही बन गया है भीख मांगना। उनकी पीढ़ी दर पीढ़ी इस काम को अंजाम देती आ रही है और वे अपने इसी पुश्तैनी काम से खुश रहते हैं तो इनको हम क्या कहेंगे। कुछ भिक्षा माफिया हैं जो बहुत से बच्चों को भिक्षावृत्ति के धंधे में धकेल देते हैं। इसे क्या कहेंगे?

नीरज कुमार पाठक, नोएडा

लालू की सुरक्षा

राजद प्रमुख लालू यादव की जेड प्लस सुरक्षा हटाने से पूरा लालू परिवार बौखलाया हुआ है। लालू इसे अपने विरुद्ध साजिश बता रहे हैं तो उनके बेटे अनर्गल प्रलाप कर रहे हैं। तेजस्वी का कहना है कि मेरे पिता को कुछ हुआ तो पीएम-सीएम जिम्मेदार होंगे, लेकिन तेजप्रताप तो मर्यादा की सारी सीमा लांघ गए। जरा सोचिए, जिस परिवार का बेटा प्रधानमंत्री को धमकी दे सकता है क्या वास्तव में ऐसे दबंग परिवार को किसी सुरक्षा की आवश्यकता है? अपितु सुरक्षा तो अन्य को उस परिवार से बचाने के लिए दी जानी चाहिए। लालू ने तो मीडिया को मामले को तूल न देने की नसीहत भी दे डाली है। आजकल सुरक्षा चक्र सिर्फ नेता की सुरक्षा के लिए ही नही रहा, वह तो राजनेताओं के लिए एक स्टेट्स सिंबल बन गया है। सरकार को सुरक्षा नीति की समीक्षा करना चाहिए।

रणजीत वर्मा, फरीदाबाद

युवा विरोधी नीति

पूर्व कांग्रेस की शीला सरकार ने जो बेरोजगार युवा शिक्षकों की जगह सेवानिवृत शिक्षकों को लगाने की गलत शुरुआत की थी वही गलती केजरीवाल सरकार भी कर रही है। इस बेहद शोषित कार्य से तीनों ही पार्टियां एक जैसी ही लगती हैं, जिन्हें युवा पीढ़ी का तनिक भी कोई ख्याल नहीं है। इस नीति से अनेकों युवा शिक्षक उम्र सीमा को पार रहे हैं। इससे सिर्फ उन्हीं की नहीं, अपितु पूरे देश को बहुत हानि हो रही है।

वेद मामूरपुर, नरेला

बच्चों को मिले शिक्षा में संस्कार

आज रिश्तों की अहमियत समाप्त होती नजर आ रही है। पूरे देश में बाल अपराध बढ़ रहे हैं। इसका नतीजा यह निकलता है कि जिन बच्चों को देश का निर्माता कहा जाता है वही देश में एक अपराधी बनते जा रहे हैं। ऐसा क्यों? इसका जिम्मेदार कौन है? इसका सीधा संबंध शिक्षा से है। आज शिक्षा व्यवसाय बन गया है। हम अपने बच्चों को बड़े-बड़े अंग्रेजी स्कूलों में पढ़ाना चाहते हैं और साथ ही उनसे ये उम्मीद करते हैं कि वह अपनी कक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो। लेकिन कहीं भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता कि शिक्षा के साथ संस्कारों का होना भी उतना ही जरूरी है जितना कि शिक्षा का लेना जरूरी है। बच्चे उस कच्ची मिट्टी के समान होते हैं जिनको कारीगर मनचाहा रूप दे सकता है। बालकों के कोमल मन पर किसी भी बात का अच्छा प्रभाव या दुष्प्रभाव बहुत जल्दी पड़ता है। हम लोग अपने बुजुर्गों को वृद्धाश्रमों में छोड़ देते हैं जिनको घरों में रख कर उचित मान-सम्मान से उनकी सेवा करनी चाहिए होती है, वही हमारे बच्चों को अच्छे संस्कार देने के लिए प्रथम गुरु माने जाते थे। पाठ्यक्रमों में नैतिक शिक्षा जैसे विषय की अत्यंत आवश्यकता है और यह कार्य सम्पूर्ण देश की शिक्षा प्रणाली में लागू किया जाना चाहिए। अभी एक नामी स्कूल में जांच कर्ताओं के अनुसार प्रद्युम्न नामक छोटे से बालक की निर्मम हत्या उसी स्कूल में पढ़ने वाले एक नाबालिक ने ही बड़े ही बेरहमी से कर दी जिससे उसकी मानसिकता का पता चलता है। बच्चों का हृदय बहुत ही कोमल होता है उनका परिवेश और वातावरण का उनके मन के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता है। स्कूली शिक्षा में उनको संस्कार और सम्मान करने जैसी शिक्षा भी जरूरी है। बच्चों को अपने बुजुर्गों के पास बैठने तक का समय नहीं मिलता जिससे उनके मन के अंदर स्नेह और प्यार जैसी भावनाएं नहीं उभर पा रही हैं।

आचार्य रामकुमार बघेल शास्त्री, संस्कृत अध्यापक, पलवल

ट्वीट-ट्वीट

केवल चुनाव के वक्त मंदिर जाकर टीका लगवाना उतना ही बड़ा अवसरवाद है जितना इफ्तार पार्टियां कर टोपी लगाना!

अखिलेश शर्मा@akhileshsharma1

राहुल गांधी सबसे पहले एक गौरवान्वित हिंदुस्तानी हैं। एक हिंदुस्तानी होना किसी भी धर्म का होने से सर्वोच्च होता है।

अमृता धवन@AmritaDhawan1

मैं जिस मेगासीरियल के लेखन से जुड़ी हूं उसके प्रसारण को ममता बनर्जी ने प्रतिबंधित कर दिया है। क्या वास्तव में वह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में विश्वास करती हैं?

तसलीमा नसरीन@taslimanasreen

पाकिस्तान का असली चेहरा एक बार फिर बेनकाब हुआ जब वहां के पूर्व सेनाप्रमुख, फौजी तानाशाह और राष्ट्रपति रहे परवेज मुशर्रफ ने लश्कर और हाफिज सईद के प्रति अपने प्रेम का खुलेआम इजहार किया।

गौरव सी सावंत@gauravcsawant

हालांकि लव जिहाद शब्द ही सही नहीं है, लेकिन अब गैर मुस्लिम लड़कियों के मुस्लिम पुरुष से शादी के लिए धर्मांतरण को लेकर इसका चलन आम हो गया है। वैसे इसका इस्तेमाल हिंदुओं ने नहीं, बल्कि केरल में ईसाई समूहों ने शुरू किया था।

तुफैल अहमद@tufailelif

जनपथ

गुड़-चींटा फिर हो गए 'बापू' उनके 'लाल',
कोने में फटके पड़े हैं चाचा शिवपाल।
हैं चाचा शिवपाल न कुछ हिस्से में आया,
हुए राम से दूर मिली ना उनको माया।
बोल गए धृतराष्ट्र सगा होता बस बेटा,
भाई को धकियाय उसी से हो गुड़-चींटा।

- ओमप्रकाश तिवारी

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (दिल्ली एनसीआर) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No 50755/90 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।